



# चिपको से एक बार फिर मुलाकात

आशीष कोठारी, नीमा पाठक

ऋषिकेश से जोशीमठ तक घुमावदार सड़क पर काफी आवाजाही होती है। उसी सड़क से यात्रा करते हुए हम विरोधाभासी भावनाओं से घिरे हुए थे। एक ओर, तो साधारण इन्सानों के समान हम विशाल और अपराजेय पहाड़ों के समक्ष बौना और विनम्र महसूस कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर, हम यह भी देख रहे थे कि इन्सान किस तरह का विनाश करने की क्षमता रखता है। लाता गांव पहुंचने तक यह भावनात्मक उथल-पुथल अपने चरम पर पहुंच चुकी थी। लाता उत्तराखंड का एक छोटा-सा गांव है, जहां चिपको आंदोलन का सूत्रपात हुआ था। भारत के इतिहास में यह गांव एक पूरे अध्याय का हकदार है। न सिर्फ इसलिए कि यह दुनिया के एक सबसे प्रेरणास्पद जन आंदोलन का जन्म स्थान है बल्कि इसलिए भी कि यह उन सारे उतार-चढ़ावों का भी गवाह है जो इस इलाके के लोगों, नदियों, और जंगलों की पहचान है।

लाता उत्तराखंड की निति घाटी में स्थित है। इसके पूर्व में नंदादेवी शिखर है। यह भोतिया आदिवासियों का गांव है, जिन्हें चिपको आंदोलन शुरू करने का श्रेय दिया जाता है। लाता के सरपंच धान सिंह राणा (जो उस समय एक बालक था) और बाली देवी (जिन्होंने आंदोलन में सक्रिय रूप से

भाग लिया था) ने हमें बताया, “1974 में रेनी गांव की महिलाओं ने एक ठेकेदार के आदमियों को गांव के ऊपर देवदार के पेड़ काटने से रोक दिया था। उस समय गांव के मर्द बाहर गए हुए थे। हम (ज्यादातर औरतें और बच्चे) इस संघर्ष में उनके साथ जुड़ गए थे।” इस छोटी-सी मगर प्रभावी कार्रवाई ने कई अन्य समुदायों और कार्यकर्ताओं को प्रेरित किया और यह इतनी शक्तिशाली बन गई कि इसने सरकारी नीति को हिला दिया। देश-विदेश के कई आंदोलनों ने रेनी और लाता की महिलाओं से प्रेरणा ली है।

## विडंबना

विडंबना तो यह है कि इन गांवों को आगे चलकर उन नीतियों का खामियाजा भुगतना पड़ा, जो कुछ हद तक उनके अपने आंदोलन का परिणाम थीं। राज्य सरकार ने हिमालय क्षेत्र में व्यापारिक रूप से जंगल काटने पर रोक लगा दी, और केंद्र ने वन संरक्षण कानून, 1980 लागू कर दिया। यह सही है कि इनका मकसद अंधाधुंध वन विनाश को रोकना था, मगर इन्होंने ग्रामीण अर्थ व्यवस्था को झकझोर दिया। घरेलू ज़रूरतों व कृषि कार्यों के लिए लकड़ी मिलना मुश्किल हो गया। यहां तक कि, जिन जंगलों

को बचाने में इन गाववासियों ने मदद की थी, उनमें से भी ये लोग लकड़ी नहीं ले सकते। विकास की छोटी-मोटी योजनाएं (जैसे वन भूमि में पाइपलाइन डालना) भी बरसों से लंबित पड़ी हैं। यह चिपको की शुरुआती गतिविधियों, जिनका मकसद था कि वनों के उपयोग व संरक्षण से मिलने वाले लाभों पर स्थानीय नियंत्रण हो, का विकृत रूप था। इस विकृति के खिलाफ आक्रोश इतना ज़बरदस्त था कि चिपको के कई कार्यकर्ताओं व गांववासियों ने पेड़ काटो आंदोलन शुरू कर दिया था। यह आंदोलन काफी हद तक पर्वतीय क्षेत्रों के लिए उत्तर प्रदेश से पृथक राज्य बनाने के आंदोलन से भी जुड़ गया था।

### व्यापक बदलाव

लाता व कई अन्य गांव के लोग पहले सफल व्यापारी रहे थे। ये गांव तिब्बत को जाने वाले विशाल व्यापार मार्ग पर अपनी रणनीतिक स्थिति से लाभांविता होते थे। 1962 के भारत-चीन युद्ध के बाद, यह व्यापार पूरी तरह ठप हो गया। जैसा कि धान सिंह राणा ने हमें बताया, “एक समय था जब हम खुदवार व्यापारी थे, आज हम सीमांत किसान बनकर रह गए हैं, जो जीविका की भीख मांगते हैं।” इस दृष्टि से देखें तो प्रतिबंधात्मक वन नीति जले पर नमक छिड़कने जैसी थी।

1982 में राज्य सरकार ने नंदादेवी के आसपास के 630 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र को राष्ट्रीय उद्यान घोषित करके हालात को और भी बदतर बना दिया। यह घोषणा स्थानीय लोगों से किसी भी सलाह-मशवरे के बगैर की गई थी। उत्तर प्रदेश के मुख्य सचिव ने सलाह दी थी कि राष्ट्रीय उद्यान की अधिसूचना जारी करने से पहले सामाजिक प्रभाव का आकलन किया जाना चाहिए मगर इसे अनसुना कर दिया गया था। न ही इस बात पर ध्यान दिया गया कि इस स्थान से लोगों का धार्मिक व सांस्कृतिक जुड़ाव है और वे जीविका के लिए इस पर निर्भर हैं। लाता, रेनी व अन्य गांवों को ऊंचाई पर स्थित चारागाहों तक पहुंच से काट दिया गया। इसके अलावा नंदादेवी के यात्रियों के लिए मार्गदर्शकों व पोर्टर्स के रूप में काम करके उन्हें जो

आमदनी होती थी, वह भी खत्म हो गई। सरकार ने वैकल्पिक चारागाह और नौकरियों के जो वायदे किए थे, वे कभी पूरे नहीं हुए।

लाता के लोगों के साथ एक बैठक के दौरान यह स्पष्ट हो गया कि आज 30 साल बाद भी राष्ट्रीय उद्यान भावनाओं को भड़का देने वाला मुद्दा है। ग्रामवासियों का गुस्सा 1998 में एक बार फिर भड़का और लाता के लोगों ने झपटो-छीनो आंदोलन शुरू किया। निति घाटी के गांवों के सैकड़ों लोगों ने जबरन राष्ट्रीय उद्यान में प्रवेश किया। यह पहुंच का अपना अधिकार जताने का एक सांकेतिक ढंग था। उनके संकल्प और दृढ़ता के सामने राज्य सरकार को वहां तैनात की गई सशस्त्र पुलिस को हटाना पड़ा था।

### भावनात्मक मुद्दा

1988 में 6407 वर्ग किलोमीटर के एक बड़े क्षेत्र को बायोस्फीयर रिज़र्व घोषित कर दिया गया। राष्ट्रीय उद्यान इसके केंद्र में था। आगे चलकर, 1992 में, इसके एक हिस्से को विश्व विरासत स्थल घोषित कर दिया गया। अलबत्ता, लाता के लोगों के लिए इन अलग-अलग नामों के बीच कोई फर्क नहीं था। और उनका विडंबनापूर्ण इतिहास यहां खत्म नहीं हुआ।

पिछले कुछ वर्षों से यह घाटी विस्फोटकों के धमाकों से दहल रही है। ये धमाके पनबिजली परियोजना की एक पूरी श्रृंखला के निर्माण के मकसद से किए जा रहे हैं। इनमें से कई स्थल, जो पहाड़ों पर घावों जैसे नज़र आते हैं, हमारी उन परस्पर विरोधी भावनाओं के लिए जवाबदेह थे, जिनका ज़िक्र शुरुआत में किया गया था। अकेली निति घाटी में 20 से ज़्यादा छोटे-बड़े बांध प्रस्तावित हैं; इनमें से कुछ तो बायोस्फीयर रिज़र्व के अंदर हैं। इनकी इकोलॉजिकल और सामाजिक लागत को लेकर सिविल सोसायटी के अनुरोध-विरोध का कोई असर नहीं हुआ है। मात्र इतना हुआ है कि गंगा घाटी के सबसे ऊपरी इलाके की दो परियोजनाएं निरस्त कर दी गई हैं। सबसे विडंबनापूर्ण नज़ारा तो रेनी गांव का था; नदी के पार पहाड़ पर ऊपर की ओर हमें गांव और गांववासियों द्वारा बचाया गया जंगल नज़र आ रहा था,

वहीं उसके ऐन नीचे, ऋषि गंगा नदी के ऊपर बड़ी-बड़ी दरारें दिख रही थीं, जहां एक बिजलीघर बनाया जा रहा है। लाता गांव ज़रूर कई वर्षों से धौली गंगा नदी पर प्रस्तावित परियोजना को रोके रखने में सफल रहा है।

लाता ने इस इलाके में टिकाऊ पर्यटन का मार्ग भी प्रशस्त किया है। 2001 में, गांववासियों ने इस बात पर आपत्ति जताई कि सरकार ने भारतीय पर्वतारोहण संघ को राष्ट्रीय उद्यान में पर्वतारोहण अभियान करने की अनुमति दी है जबकि गांववालों का यहां प्रवेश वर्जित था। एलाएंस फॉर डेवलपमेंट नामक एक गैर सरकारी संगठन मंच द्वारा संयुक्त रूप से आयोजित एक कार्यशाला में गांववालों ने 'नंदादेवी जैव विविधता संरक्षण व इकोपर्यटन घोषणा पत्र' जारी किया था। इसमें उन्होंने इस क्षेत्र में पर्यटन व अन्य आर्थिक गतिविधियों से लाभ प्राप्त करने और उनका नियंत्रण करने का अपना अधिकार जताया था। (यह घोषणा पत्र <http://mountainshepherds.com/research/nanda-devi-declaration/> पर उपलब्ध है।) दबाव में आकर सरकार ने राष्ट्रीय उद्यान में कुछ ट्रेकिंग मार्ग स्थानीय लोगों द्वारा प्रबंधन के लिए खोल दिए। हालांकि अभी भी यह पहल इतनी छोटी है कि इससे बहुत ही थोड़े से लोगों को कोई आर्थिक लाभ मिल सकता है मगर इसकी संभावनाएं माउन्टेन शेफर्ड की गतिविधियों से पता चलती हैं। माउन्टेन शेफर्ड लाता स्थित एक कंपनी है जिसका संचालन ज़्यादातर स्थानीय युवा करते हैं। इन युवाओं को पर्वतारोहण के विभिन्न पहलुओं का प्रशिक्षण दिया गया है और आज ये प्रति वर्ष करीब एक दर्जन ट्रेक्स करवा पाते हैं। (जानकारी के लिए देखें: [www.mountainshepherds.com](http://www.mountainshepherds.com))। वन विभाग ने दो गांवों में घरों पर रुकने की व्यवस्था बनाने में मदद की है।

वन विभाग ने हाल ही में यूनेस्को से वित्तीय सहायता ली है तथा पनबिजली परियोजनाओं से क्षतिपूर्ति राशि प्राप्त की है, ताकि गांववासियों को इको-विकास के लाभ प्रदान किए जा सकें। भारतीय वन्य जीव संस्थान और कल्पवृक्ष द्वारा अप्रैल 2011 में आयोजित एक सलाह-मशवरा बैठक में लाता, रेनी, पैंग और तोल्मा के निवासियों ने शिकायत की कि जब राष्ट्रीय उद्यान की वजह से मूलतः उन्होंने

अपनी जीविकाएं गंवाई हैं, तो इन राशियों के खर्च में उनको प्राथमिकता मिलनी चाहिए। विभाग के अधिकारियों ने आश्वासन दिया है कि वे अगले वर्ष की कार्य योजना में इस बात का ध्यान रखेंगे। उन्होंने गांववासियों के साथ संवाद के एक मंच पर भी सहमति जताई है।

## फिर एक बार

अलबत्ता, लाता की महिलाओं को शंका है कि इन नए आश्वासनों का हश्र भी पहले जैसा होगा। उन्होंने पूर्व के कुछ अधिकारियों का ज़िक्र काफी प्रशंसा के साथ किया, जिनके साथ उन्होंने गांव के समग्र विकास व संरक्षण के कार्यक्रम बनाए थे। इनमें से कोई कार्यक्रम अमली रूप नहीं ले पाया, क्योंकि तंत्र ने इन्हें अंगीकार नहीं किया। गांववासी क्षेत्र के अन्य सरकारी विभागों से भी निराश हैं। लिहाज़ा, वे वन अधिकार कानून की संभावनाओं के बारे में सुनकर बहुत उत्साहित हुए। यह कानून शायद उन्हें उस वन क्षेत्र में नियंत्रण प्रदान करेगा जिसका उपयोग वे पारंपरिक रूप से करते आए हैं। हो सकता है कि इससे शायद उन्हें अनुपयुक्त पनबिजली विकास के खिलाफ अपना संघर्ष जारी रखने के कुछ औज़ार हासिल होंगे।

वास्तव में टकरावों को सुलझाकर एक ऐसी राह अपनाना संभव है जो एक लैण्डस्केप के स्तर पर संरक्षण और जीविकाओं की सुरक्षा दोनों सुनिश्चित करे। समुदाय द्वारा प्रबंधित वन पंचायतें, स्थानीय लोगों का ज्ञान व उत्साह, वन अधिकारियों का सकारात्मक रवैया, बायोस्फीयर रिज़र्व और विश्व विरासत स्थल की स्थिति, और वन अधिकार कानून द्वारा प्रदत्त कानूनी गुंजाइशें वगैरह इस संभावना के घटक हैं। ज़रूरत है एक संस्थागत ढांचे की जो स्थानीय लोगों, वन विभाग व अन्य सरकारी अधिकारियों, गैर सरकारी संगठनों और बाहरी विशेषज्ञों को साथ लाए ताकि इस संभावना को साकार किया जा सके। मगर यदि निर्णय प्रक्रिया देहरादून और दिल्ली की नौकरशाही के हाथों में केंद्रित रही, तो लाता के उतार-चढ़ाव यहां के बांशिंदों को त्रस्त करते रहेंगे, जो देश के हज़ारों अन्य गांवों के यथार्थ का ही प्रतिबिंब हैं। (स्रोत फीचर्स)